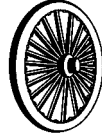


VRI Series No. 114

# समता धर्म

सत्यनारायण गोयन्क ।



विपश्यना विशोधन विन्यास,  
धम्मगिरि, इगतपुरी- ४२२ ४०३,  
महाराष्ट्र, भारत

## विपश्यना: एक परिचय

श्री गोयन्काजीने म्यंमा के महान विपश्यना आचार्य सयाजी ऊ बा खिन से सर्वप्रथम सन १९५५ में 'विपश्यना' की साधना सीखी। तब से अभ्यास का क्रम जारी रहा। सन १९६९ में भारत आये। व्यापार-धंधे से सर्वथा अवकाशग्रहण कर भारत के विभिन्न स्थानों पर **विपश्यना** साधना-विधि के दस दिवसीय शिविर लगाते रहे। सन १९७६ में प्रमुख विपश्यना केंद्र 'धम्मगिरि' की स्थापना के पश्चात अब तक पूरे विश्व में लगभग ५० विपश्यना केंद्र स्थापित हो चुके हैं तथा अन्य नए-नए केंद्र खुलते चले जा रहे हैं, जहां साधकों के लिए निःशुल्क निवास तथा भोजनादि की स्थाई व्यवस्था रहती है। विपश्यना सिखाने का सारा खर्च कृत्त साधकों के दान पर निर्भर होता है। शिविरों का संचालन पूज्य गोयन्काजी तथा उनके द्वारा नियुक्त विश्व भर के लगभग ४०० से अधिक सहायक आचार्यों द्वारा किया जाता है। शिविर-कालके दौरान साधकोंको बाहरी संपर्क से दूर, केंद्रों पर ही रहना अनिवार्य होता है।

भगवान गौतम बुद्ध द्वारा गवेषित 'विपश्यना' विद्या सर्वथा संप्रदायहीन एक प्रयोग प्रधान विधा है जिसमें अपने भीतर की सच्चाई का दर्शन करते हुए अपने मन को निर्मल बनाना तथा ऋतयानी प्रकृति के नियम के अनुसार आचरण करने का अभ्यास किया जाता है। इसी को धर्म कहते हैं। कालांतर में हम **धर्म** शब्द का सही अर्थ भूल गये और संप्रदाय को ही धर्म मानने लगे। आज जबकि धर्म के नाम पर चारों ओर इतनी अराजकता फैली हुई है, यह सांप्रदायिकता-विहीन विद्या घोर अंधकार में प्रकाश-स्तंभ सदृश है।

ध्यान की यह विद्या सीखने के लिए हर संप्रदाय के लोग - चाहे वे हिंदू हों या मुस्लिम; जैन, ईसाई, बौद्ध हों या सिक्ख - सभी आते हैं। बच्चों से लेकर वृद्ध बुजुर्गों तक सब उम्र के लोग आते हैं। बहुत ऊंची शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी आते हैं तो दूसरी ओर बिल्कुल निरक्षर अनपढ़ लोग भी आते हैं। अत्यंत धन-संपन्न भी आते हैं और बिल्कुल धनहीन भी। पुरुष-नारी तथा डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, व्यापार-उद्योगों के संचालक सभी आते हैं। किसी भी विपश्यना शिविर में समाज के हर वर्ग का यह अनूठा संगम आसानी से देखा जा सकता है। इतनी विविधताओं के होते हुए भी सभी लोग लाभान्वित होते हैं।

पूज्य श्री गोयन्काजी का यह लेख अधिक से अधिक लोगों को धर्म-मार्ग पर चल सकने के लिए प्रेरणा प्रदायक सिद्ध हो, यही मंगल भावना है।

## विपश्यना विशोधन विन्यास.

मूल्य: रु. १/-

प्रकाशक :

### विपश्यना विशोधन विन्यास

धम्मगिरि, इगतपुरी- ४२२४०३, जिला- नाशिक, महाराष्ट्र, भारत

फोन: ०२५५३- २४४०७६, २४४०८६, २४४३०२ फैक्स: ०२५५३- २४४१७६.

## समता धर्म

समता धर्म है, विषमता अधर्म। समता अनासक्ति है, विषमता आसक्ति। जहां आसक्ति है वहां दुख ही है। जहां अनासक्ति है वहीं सच्चा सुख है, सच्ची शांति है।

विषयना साधना द्वारा हम देखते हैं कि शरीर पर आधारित इस चित्तधारा में विविध कारणों से समय-समय पर सुखद और दुखद दोनों ही प्रकार की संवेदनाएं प्रकट होती रहती हैं। सुखद संवेदना हमें प्रिय लगती है और उसके प्रति राग पैदा होता है। परिणामतः उसे कायम रखने के लिए हम आतुर हो उठते हैं। वह छूट न जाय, इस निमित्त आशंकि त-आतंकि तहो उठते हैं। असुरक्षितता की बेचैनी महसूस करने लगते हैं। परंतु प्रकृति के परिवर्तनशील नियमों के कारण यह सुखद संवेदना नष्ट होती ही है। और जब दुखद संवेदना प्रकट होती है तो उसके प्रति कितना द्वेष जागता है! उसे दूर करने के लिए कितने आतुर हो उठते हैं! क्या यह कभी दूर नहीं होगी! इस भय-आशंका से आतंकि तहो उठते हैं। फिर असुरक्षा की बेचैनी में जकड़ जाते हैं। दोनों ही अवस्था में अशांत, बेचैन रहते हैं। राग और द्वेष से आसक्ति जागती ही है। असुरक्षा की भावना जागती ही है। मन अपना संतुलन खो ही बैठता है। यही विषमता है। सुखद-दुखद स्थितियों के रहते भी मन राग-द्वेष से विहीन रहता हो तो ही अनासक्ति रहता है। सदा सुरक्षित महसूस करता है, अपना संतुलन नहीं खोता, शांत रहता है।

सुखद-दुखद स्थिति के प्रति पूर्ण संवेदनशील और जागरूक रह कर भी अविचलित रहना ही समता है। समता चट्टानी जड़ता नहीं है, मरघट की शांति नहीं है। जहां चित्त को उत्तेजित करने वाले आलंबन उद्दीपन ही न हों, वहां समता सही समता है यह कैसे कहा जा सकता है! जहां उत्तेजित करने वाले आलंबन उद्दीपन हों तो भी, उत्तेजित हो सकने वाला चित्त ही सुसुप्त हो, वहां भी समता सही समता है यह कैसे कहा जा सकता है! समता नकारात्मक नहीं है; मूढ़ता, मूर्खा, कुंठा नहीं है। कोई हमें भाजी की तरह काट जाय और हमें पता ही न चले, ऐसी अचेतन अवस्था नहीं है। यह कोई एनिस्थीसिया की सूंघनी नहीं है, मॉर्फिन का इन्जेक्शन नहीं है। पूर्ण चेतन रहें, फिर भी सम रहें तो ही सम हैं। नहीं तो गहरी नींद में सोने वाला अथवा मूर्च्छित अथवा मूढ़ व्यक्ति समता का दंभ भर सकता है।

सुखद से प्रफुल्लित हो उठना और दुखद से मुरझा जाना ही तो वैषम्य है। दोनों के रहते संतुलित-समरस रहना ही समता है। परंतु समता हमें अशक्ति और कर्मशून्य नहीं बनाती। सच्ची समता आती है तो प्रवृत्ति जागती है। ऐसी प्रवृत्ति परम पुरुषार्थ का रूप धारण करती है। परम पुरुषार्थ में अपने-पराये का भेद नहीं रहता। ऐसी पुरुषार्थ-प्रदायिनी समता जितनी-जितनी सबल होती है जीवन में उतना-उतना मंगल उतरता है। आत्म मंगल भी, जन मंगल भी। समता जितनी दुर्बल होगी उतना ही अपना भी अनर्थ होगा, औरों का भी।

समता-धर्म जीवन-जगत से दूर भागना नहीं है, पलायन नहीं है, जीवन-विमुख होना नहीं है। समता धर्म जीवन-अभिमुख होकर जीना है। जीवन से दूर भाग कर आखिर कहां जायेंगे? विषयों से दूर भाग कर कहां जायेंगे? सारा संसार विषयों से भरा पड़ा है। विषय हमारा क्या बिगाड़ते हैं? न वे हमारे शत्रु हैं, न मित्र। न वे भले हैं, न बुरे। भला-बुरा है उनके प्रति हमारा अपना दृष्टिकोण –अनासक्त दृष्टिकोण अथवा आसक्त दृष्टिकोण, सम दृष्टिकोण अथवा विषम दृष्टिकोण। यदि हम विषय से दूर भागने के बजाय विषयों से उत्पन्न होने वाले विकारों को समता से, अनासक्ति से देखना सीख जायें तो उन विषयों के रहते हुए भी विकारों को निस्तेज कर ही लेंगे। समता से, अनासक्ति से देखना ही विशेषरूप से देखना है, प्रज्ञापूर्वक देखना है, सम्यक दृष्टि से देखना है। यही विदर्शना है, यही विपश्यना है। समतामयी विपश्यना की दृष्टि प्राप्त होती है तो “मैं-मेरे” का और “राग-द्वेष” का कोहरा दूर होता है। जो जैसा है वैसा ही दीखता है। और तब हम अंध प्रतिक्रिया करना छोड़ देते हैं। समता की सुदृढ़ भूमि पर स्थिर होकर हम जो कुछ करते हैं वह शुद्ध क्रिया ही होती है, प्रतिक्रिया नहीं। इसलिए कल्याणकारी ही होती है, अमंगलकारी नहीं।

भीतर चित्तधारा में उठने वाली सुखद-दुखद संवेदनाओं के प्रति पूर्ण समता का भाव आने लगता है तो बाह्य जीवन में सहज समता प्रकट होने ही लगती है। बाह्य जीवन-जगत की सारी विषमताएं आंतरिक समता को भंग नहीं कर पाती। जीवन में आते रहने वाले उतार-चढ़ाव, ज्वार-भाटे, बसंत-पतझड़, धूप-छांह, वर्षा-आतप, हार-जीत, निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान, लाभ-हानि आदि द्वंद्वों से मन विचलित नहीं हो पाता। सारी स्थितियों में समरस बना रहता है।

आंतरिक समता की पुष्टि से ही योग-क्षेम पुष्ट होता है। इसी से हजार प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी अपनी सुरक्षा का मिथ्या भय दूर होता है। जीवन में वैशारद्य आता है, निर्भयता आती है। अगले क्षण क्या हो जायगा! इसके लिए चिंतित व्यथित, आकुल-व्याकुल नहीं होता। मेरे पुत्र-कलत्र, धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा, सत्ता-शक्ति, स्वास्थ्य-आयु सुरक्षित रहेंगे या नहीं! इन निरर्थक चिंताओं से विमुक्ति प्राप्त होती है। प्रतिक्षण परिवर्तनशील प्रकृति को अपरिवर्तनीय बनाए रखने का प्रयत्न प्रयास, जीवन जगत की सतत प्रवाहमान धारा को रोक रखने का उन्मत्त आग्रह, पानी के बुदबुदों को मुट्टी में भींच कर ‘मेरा’ बनाए रखने का निपट-निरर्थक प्रयत्न सहज ही छूट जाता है। जीवन से कुटिलता-विषमता, खिंचाव-तनाव स्वतः दूर होने लगते हैं। परिस्थितियों की बदलती हुई लहरों पर सहजभाव से तैरना आ जाता है। नितांत कर्मशील रहते हुए भी परिणामों के प्रति उन्मुक्त निश्चितता आती है और साथ-साथ व्यवहार कौशल्य में प्रौढ़ता आती है। यही समता धर्म का मंगल परिणाम है।

समता आती है तो मन, वाणी और शरीर के कर्मों में शुद्धता आती है, उनमें सामंजस्य आता है। परिणामतः जीवन में स्वस्थता आती है। वात-पित्त-कफ में विषमता आ जाय तो शरीर रोगी हो जाय। इसी प्रकार मन, वाणी और शरीर के कर्मों में विषमता आ जाय तो जीवन रोगी हो जाय। मन में कुछ हो, बोले कुछ और, करे कुछ और, तो अस्वस्थ ही हो जायेंगे। ताल-स्वर-लय की समता में जैसे तन्मयता आती है,

वैसे ही मन-वाणी-शरीर के कर्मों की समता में भी तन्मयता आती है। परम सुख प्राप्त होता है। समता का सुख संसार के सारे सुखों से परे है, श्रेष्ठ है।

समता ही स्वस्थता है। मन की समता नष्ट होती है तो ही नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। मानसिक भी और परिणामतः शारीरिक भी। समतापूर्ण जीवन जीने वाला कलावंत व्यक्ति ही स्वस्थ जीवन जीता है। समतामय जीवन जीने वाले का अहंभाव आत्मभाव नष्ट होता है। वह अनात्म का मंगल जीवन जीता है। 'मैं' और 'तू' का विषमताभरा एकान्तीय-एकपक्षीय दृष्टिकोण टूटता है। समता-समन्वय का अनेकान्तीय-अनेकपक्षीयदृष्टिकोण पनपता है। विषमता आसक्ति की ओर झुकती है। आसक्ति अतियों की ओर झुकती है। और अतियों की ओर झुक जाने के कारण ही भिन्न-भिन्न प्रकार के दृष्टिदोष उत्पन्न होने लगते हैं। "केवल मेरी मुक्ति हो जाय, बाकी समाज भले जहन्नुम में जाय। यह पुत्र, यह कलत्र, यह भाई, यह बंधु सब बंधन हैं। मुझे इनसे क्या लेना-देना! मैं कैसे अपनी मुक्ति साध लूं! इनके भले-बुरे से मुझे कोई लेन देन नहीं।" ऐसा सोचने वाला व्यक्ति अतियों के एक अंत में उलझा रहता है। दूसरी ओर केवल "मैं और मेरे" परिवार की सीमित परिधि में आकंठ डूबा हुआ व्यक्ति अतियों के दूसरे अंत में उलझा रहता है। समता-धर्म मध्यम मार्ग का धर्म है। समता-धर्म आत्म-मंगल और पर-मंगल के समन्वय सामंजस्य का धर्म है। व्यक्ति जंगल के पेड़-पौधों की तरह स्थावर नहीं है। वह जंगम है। चलता-फिरता है और अन्य अनेक लोगों से उसका संपर्क, संबंध बना रहता है। आत्म शोधन के लिए कुछ काल एकान्त वास करना और अंतर्मुखी होना आवश्यक व कल्याणकारी है। परंतु इस प्रकार शोधे हुए मन का बाह्य जगत में सम्यक प्रयोग हो तो ही धर्म पुष्ट होता है।

"मैं" के संकुचित बिंदु से चिपका रहने के कारण ही दृष्टि धूमिल हो जाती है कर्म-सिद्धांत की वैज्ञानिकता स्पष्ट समझ में नहीं आती। आसक्तिजन्य अतियों की ओर झुक जाता है और यह मानने लगता है कि हर व्यक्ति केवल अपने पूर्व कर्मों से ही प्रभावित होता है। औरों के कर्मों से उसे कतई लेना-देना नहीं। जबकि सच्चाई यह है कि हर व्यक्ति अपने कर्मों से तो प्रभावित होता ही है। परंतु सारे समाज के कर्मों से भी कम प्रभावित नहीं होता। व्यक्ति अपने कर्मों का फलित-पुतला तो है ही, परंतु समग्र मानव समाज की अब तक की प्रगति या प्रतिगति की विरासत भी लिए ही हुए है। हमारे कर्म हमें तो प्रभावित करते ही हैं, परंतु कर्मोबेश औरों को भी प्रभावित करते ही रहते हैं। हम अपने कर्मों की विरासत अपनी भवधारा को तो दे ही रहे हैं, परंतु साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों को भी कुछ न कुछ दे ही रहे हैं। न व्यष्टि समष्टि से अछूता रह सकता है और न समष्टि व्यष्टि से। न व्यक्ति समाज से अछूता रह सकता है और न समाज व्यक्ति से। दोनों अन्योन्याश्रित हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति और समुदाय के संबंधों में समता, सामंजस्य की स्थापना ही शुद्ध धर्म का मंगल परिणाम है। समता का शुद्ध धर्म जितना-जितना विकसित होता है, व्यक्ति उतना-उतना "मैं" के संकुचित बिंदु से आगे बढ़ता है। यह "मैं" का बिंदु ही है जो कि अपने ईद-गिर्द 'मेरे' के वृत्त पैदा करता रहता है। शनैः शनैः इस 'मेरे' के वृत्त की

संकीर्णता भी दूर होती है। 'मेरे' का वृत्त विकसित होते-होते, साम्य की पूर्णता प्राप्त होने पर असीम हो जाता है।

जब तक 'मैं' की संकीर्णता में आवद्ध रहता है तब तक इस 'मैं' के लिए किसी की भी हानि करने में नहीं संकुचित होता। दायरा जरा-सा बढ़ता है तो जिन्हें 'मेरा' कहता है, उनकी हानि करने से रुकता है। 'मैं' के दायरे से निकलता है तो 'मेरे' के संकुचित दायरे तक सीमित हो जाता है - 'मेरी' पत्नी, 'मेरा' पुत्र के दायरे तक। उससे और आगे बढ़ता है तो मेरा कुल, मेरा गोत्र, मेरा वर्ण, मेरी जाति, मेरा संप्रदाय, मेरा प्रदेश, मेरा राकी परिधि में अटक कर रह जाता है। समता धर्म में परिपुष्ट होता है तो ये परिधियां भी टूटती हैं। मानव मात्र के ही नहीं, प्राणिमात्र के हित-सुख में अपना हित-सुख देखता है। किसी भी प्राणी के हित-सुख का हनन करके अपने हित-सुख की कुचेष्टा तो दूर, ऐसा चिंतन तक नहीं कर सकता।

जहां दायरे हैं वहां विषमता ही है। दायरा जितना संकुचित है विषमता उतनी ही तीव्र है। साम्य का उतना ही अधिक अभाव है। साम्य के अभाव के कारण ही जो 'मैं' हूँ, जो 'मेरा' है, उसके हित-सुख के लिए, उसकी सुरक्षा के लिए जो 'मैं' नहीं हूँ, जो 'मेरा' नहीं है उसकी हानि की जाती है। जब तक ऐसा है तब तक जीवन पाप से ही भरा रहता है। जो 'मैं-मेरा' है उसके लिए 'एक कण' भी जुटा सके तो जो 'मैं-मेरा' नहीं है उसका 'एक मन' भी मिट्टी में मिलाते हुए नहीं हिचकते। 'मैं-मेरे' के लिए किसी दुर्बल के मुँह का कौर छिनते हुए नहीं झिझकते। 'मैं-मेरे' के अंधेपन में जघन्य से जघन्य पाप कर्म भी अनुचित नहीं लगता।

विषमता 'मैं-मेरे' की, 'अहं-ममं' भाव की जननी है। अहं-ममं भाव विषमता का पोषक है। अहं-ममं भाव के कारण ही हम तीव्र लोभ के वशीभूत होकर संग्रह-परिग्रह करते हैं और अनेकों को अभावग्रस्त कर सामाजिक समता की हत्या करते हैं। तीव्र दंभ के वशीभूत होकर ऊंचे कुल, ऊंचे वर्ण, ऊंची जाति का नशा सिर पर चढ़ाते हैं और समाज में ऊंच-नीच का भेद-भाव पैदा कर सामाजिक समता की हत्या करते हैं। सत्ता के मद में मदहोश होकर निर्बल और भोले लोगों का दमन और शोषण करते हैं और सामाजिक समता की हत्या करते हैं। इस प्रकार आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपने अहं का पोषण करते हुए, वैषम्य पैदा करते हैं। औरों के समान अधिकारों को कुचलते हुए निर्मम पैशाचिक व्यवहार करते हैं और अपने तथा अन्य सबों के दुख का कारण बनते रहते हैं। यह सब समता के अभाव के कारण ही होता है। अपने-पराये का भेद मिटा कर साम्यभाव आए तो ऐसी नृशंसता कर ही न सकें। यदि मैं मिलावट की औषधि बेचने वाला लोभी व्यापारी हूँ तो अपने बीमार बेटे को वैसी औषधि कभी नहीं देता। अपने और पराये का भेद दूर हो तो किसी को भी मिलावट की औषधि नहीं दूंगा। यदि मैं रिश्वतखोर शासक हूँ या शासनाधिकारी हूँ तो अपने बेटे से रिश्वत कभी नहीं लेता। अपने और पराये का भेद दूर हो तो किसी से भी रिश्वत नहीं लूंगा। यदि उच्च वर्ण के मिथ्या दंभ का शिकार हूँ तो अपने पुत्र को अछूत कहकर कभी नहीं दुतकारता। अपने और पराये का भेद दूर हो तो किसी को भी अछूत

कहकर नहीं दुतकारूंगा। अपने और पराये का भेद दूर होना ही वैषम्य का दूर होना है। सर्वमंगलकारी साम्यभाव का प्रतिष्ठापित होना है।

जहां शुद्ध साम्यभाव प्रतिष्ठापित होता है, वहां 'स्व' और 'पर' की सीमा टूटती ही है। परिणामतः शोषण मिटता है, सहकारिता आती है। क्रूरता मिटती है, मृदुता आती है। अन्याय मिटता है, न्याय आता है। संकीर्णता मिटती है, विशालता आती है। अहंभाव-हीनभाव मिटता है, भ्रातृभाव आता है। अधर्म मिटता है, धर्म आता है।

एक ओर अपने मिथ्या स्वार्थों की सुरक्षा के लिए भयभीत और आतंकित होकर किसी दुर्बल व्यक्ति को कोहनी मार कर नीचे गिराने और उसे पांव तले रौंदने की क्रूरता और दूसरी ओर योग-क्षेम से परिपूर्ण होकर निर्भय रहते हुए सब के हित-सुख में ही अपना हित-सुख देखने की विशाल हृदयता, इन दोनों के बीच की सारी स्थितियां समता धर्म के विकास की ही सीढ़ियां हैं।

समता पुष्ट होती है तो सामंजस्य आता है, समन्वय आता है, स्नेह-सौहार्द आता है, सहिष्णुता आती है। सहयोग, सद्भाव, सहकारिता सहज भाव से ही आ जाते हैं। इनके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। ये सब नहीं आ रहे हैं तो अवश्य कुछ कमी है। अभी जीवन में सही विपश्यना, सही समता नहीं आयी है। समता की साधना के नाम पर कोई छलना आयी होगी, कोई माया आयी होगी, कोई धोखा आया होगा। दार्शनिक बुद्धिविलास का एक और चमकीला लेप आया होगा। अवश्य ही अंतर्मन अभी विषमता से भरा हुआ है। अपने आपको इसी कसौटी से कसकर जांचते रहना चाहिए।

सचमुच समता पुष्ट होगी तो अपनी हानि करके भी औरों का हितसाधन ही होगा और यह सहजभाव से होगा। दीये की बत्ती स्वयं जलती है पर बदले में लोगों को प्रकाश ही देती है। धूप बत्ती स्वयं जलती है पर बदले में सब को सुवास ही देती है। चंदन की लकड़ी स्वयं कटती है पर बदले में सब के लिए सुरभि ही बिखेरती है। फलवाला वृक्ष स्वयं पत्थर की मार सहता है पर बदले में सब को फल ही देता है। और यह सब कुछ सहजभाव से होता है समता सहज हो जाय तो सब के मंगल का स्रोत खुल जाय।

ऐसे सर्वमंगलमय समता-धर्म में स्थापित होने के लिए अभ्यास करें!

---

अधिक जानकारी के लिए-

संपर्क : **विपश्यना विशोधन विन्यास**

धम्मगिरि, इगतपुरी- ४२२ ४०३, जिला- नाशिक, महाराष्ट्र, भारत

फोन: ०२५५३- २४४०७६, २४४०८६, २४४३०२

फैक्स: ०२५५३-२४४१७६.